ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

योद्धा होने का सच

प्रमोद कुमार प्रसाद
असिस्टेंट प्रोफेसर,
हिन्दी विभाग
जे0 के0 कॉलेज,
पुरुलिया

सारांश

वर्तमान कथा–साहित्य में संजीव एक बड़ा नाम है। संजीव असाधारण प्रतिभा के धनी तथा बड़े लेखकों की जमात में अपना स्थान अपने लेखन के माध्यम से निर्धारित करवाने वाले कथाकार हैं। यथार्थवादी लेखन की परम्परा में पूरी तरह से फिट भारतीय आत्मा को अपनी रचनाओं में हू–ब–हू उतार देना मानो उनके कथा–साहित्य का मूल उत्स है। डॉ0 शहाजहान मरेण को दिए गये एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था, ''साहित्यकार समाज को दृष्टि, विवेक, शौर्य से संबलित करें। वह पाठक को सुलाए नहीं, न ही उसका उद्देश्य मनोरंजन तक सीमित रहें। इसे पढ़ने के बाद आदमी के बोध का विस्तार हो और वह वहीं नहीं रह जाए जो पढ़ने के पहले था।''[1]

का पूरा कथा–साहित्य 50–60 वर्षों का भारतीय यथार्थ के अनुभव की प्रमाणिकता भी अनुभूति है तथा अनुभूति जगत की अभिव्यक्ति ही रचनाकार की श्रेष्ठ रचना होती है। तथा यही अनुभूतियाँ संजीव से कहानियाँ लिखवा लेती है। यह सच है कि एक लेखक जो यथार्थ की भावभूमि पर खड़ा होकर लिखता है, वह अपने अनुभव के आधार पर ही साहित्य को कुछ मूल्यवान तथ्य दे पाता है। साहित्य लेखन के संदर्भ में इनकी एक व्यक्तिगत घटना याद आती है कि जब संजीव उत्तर प्रदेश के बांगर कला गाँव से निकलकर कुल्टी पहुँचते हैं तब यहाँ आकर इनका बाल–मन इतिहास को जानने और पढ़ने में अपनी रूचि जाहिर करता है। पर किसी कारणवश इनका दाखिला विज्ञान में होता है और फिर क्या? बाद में संजीव को इतिहास जानने की भूख और वैज्ञानिक तकनीकि, साहित्य जगत को देखने की व्यापक सुदृष्टि प्रदान करती है। अजीब कम्बीनेशन और गजब का भाषाई प्रेम। सचमुच संजीव अद्भुत और विलक्षण रचनाकार हैं। उनके उपन्यासों में सूत्रधार, आकाश चम्पा, धार, सावधान नीचे आग है, रह गई दिशाएँ इस पार तथा संजीव की कथा यात्रा तीन खंडों में प्रकाशित है और सबमें वर्तमान यथार्थ जनजीवन को पकड़ने की जबरदस्त जद्दोजहद है।

कथाकार संजीव के साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है अपने लेखन के लिए विविध विषयों का चयन। जिस तरह उपन्यास में उनका आगमन विविध विषयों के साथ होता है उस तरह कहानियों में भी उनके लेखन की विविधता को और विशाल अनुभव जगत को महसूस किया जा सकता है। यह वही कहानीकार संजीव हैं जो ''तीस साल का सफरनामा' में भ्रष्ट प्रशासन व्यवस्था, पुलिस और मजदूर के कटु यथार्थ को लेकर आते हैं तो ''आप यहाँ हैं' में भारतीय नारी के यथार्थ जीवन का, भूमिका तथा अन्य कहानियों में गरीबी और बेरोजगारी का, ''ब्लैक होल' में बाजारवाद और उपभोगताद के दुष्परिणामों का, ''खोज' के जरिए नक्सलवादी आन्दोलन के अंतर्विरोध का और सांस्कृतिक मूल्यों के विपर्यय का तथा पूँजीवाद के दुष्परिमाणों का तो ''योद्धा' के माध्यम से जातिवाद का शिकार हुए उस समाज का बड़े प्रतिबद्धता के साथ रेखांकन किया है जिसकी वर्तमान समाज के विकास और उन्नयन के लिए युग की माँग के रूप में आवश्यकता थी। उनके साहित्य का मूल उद्देश्य मनुष्य में छिपे शौर्य और विवेक का सम्मान, हर तरह के शोषण के खिलाफ , हर तरह लड़ी जा रही मुक्ति की लड़ाई के पक्ष में उठी हुई चीख या प्रतिकार।

मुख्य शब्द : वर्ण–वर्ग, मूल्यहीनता, मूल्यबोध

प्रस्तावना

संजीव का जन्म उस समय की देन है, जब देश स्वाधीन होता है। अर्थात् कहीं न कहीं तमाम आपदा – विपदा या किसी बड़ी सामाजिक–राजनीतिक हलचल तथा प्रतिकुल परिस्थितियों व मोड़ों से होकर गुजरना इनके रचनात्मक क्षमता को तेज धार देता है। चाहे वह कथ्य हो या फिर चरित्र या फिर क्यों न भाषा व उद्देश्य हो। वातावरण तो मानों पूरे प्लॉट का

मापक यंत्र हैं। संजीव की खासियत है कि वह किसी भी घटना की टोह में जाते हैं, समय देते हैं, उसका सर्वेक्षण करते हैं और तब जाकर उसे अपने लेखन में हू–ब–हू उतारते हैं। इतना कुछ एक बड़े कथाकार से ही संभव है, जिसमें संजीव माहिर है। संजीव निरन्तर अपनी जमीन और माटी से जुड़े रहने वाले कथाकार हैं, फलतः मानवीय संवेदना के ढेरों अंतःसाक्ष्य अपनी कहानियों में वह उपस्थित कर पाते हैं। डॉ0 शहाजहान मरेण को दिए गये एक साक्षात्कार में उन्होंने कहा था, ''" साहित्यकार समाज को दृष्टि, विवेक, शौर्य से संबलित करें। वह पाठक को सुलाए नहीं, न ही उसका उद्देश्य मनोरंजन तक सीमित रहें। इसे पढ़ने के बाद आदमी के बोध का विस्तार हो और वह वहीं नहीं रह जाए जो पढ़ने के पहले था।''1 योद्धा कहानी ग्रामीण परिवेश को केन्द्र में रखकर लिखी गई है जो जातीय संकीर्णता के विभेद को उजागर करती है। कहानी में एक ओर सवर्ण तो दूसरी ओर अवर्ण दोनों में आगे निकल जाने की होड़ व जद्दोजहद, अपने समय समाज के जातीय दम्भ का सुदर प्रतिफलन है। पूरी कहानी में ऊँच–निच का द्वन्द्व, ग्रामीण और नागरबोध का अंतःसंघर्ष तथा बाजारवाद और भूमण्डलीकरण के नाम पर उत्पन्न नवीन मूल्य, श्रम और संघर्ष की महिमा को न पहचान पाने का दंश, सांस्कृतिक रूप से विरासत में मिली जातिवाद की घातक पृष्ठभूमि कहानी का मूल उद्देश्य है। कहीं न कहीं भारतीय गाँवों का अब यह सब कुछ संस्कार बन चुका है पर यह संस्कार भी सवाल में परिणित हो रहा है। जो आवाज उठा रहा है कि क्या इससे उबर पाना संभव है। संजीव की कहानी योद्धा इन्हीं ज्वलंत विषयों की ओर पाठकीय ध्यान आकृष्ट करती है, जिसे संजीव पूरी यथार्थता में प्रस्तुत करने का पूरा प्रयास करते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

आजादी के 70 वर्षों के बाद खासकर ग्रामीण परिवेश में बहुत कुछ परिवर्ति हुआ है। आज के गाँव शहरों में तबदील होते गये। ग्रामीण मनुष्यों के रहन–सहन, आचार–विचार, बोली–भाषा व व्यवहार में ही नहीं बल्कि मानवीय संवेदना में भी फर्क पड़ा है पर इन सबके बीच यदि कोई एक चीज नहीं बदली वह है उनका वैचारिक चिंतन। अर्थात् ग्रामीण आमजनों में नये विचारों का आगमन हुआ है। पर विचार भी वर्णन गाँवों में अलगाव और विभेद के रूप में परिणित होते दिखाई पड रहे हैं। विचार से संजीव की कही एक बात याद आती है, विचारों से समाज को नहीं बदला जा सकता, समाज को बदलने के लिए एक्शन' की आवश्यकता है चाहे जैसा है। पर हो न सका यदि ऐसा होता तो संभवतः ग्रामीण परिवेश का कुछ और ही यथार्थ होता। योद्धा कहानी के ग्रामीण परिवेश के संदर्भ में जो पहला बड़ा सवाल लेखक समाज के सामने रखता है वह यह कि हमारे समाज की वह कौन सी संस्कृति है जहाँ व्यक्ति का आंकलन उसके जाति के आधार पर किया जाता है। एक को ससम्मान बुलाया जाता है और दूसरे को गाली देकर बुलाया जाता है। कथाकार इस सत्य का खुलासा इन पंक्तियों के माध्यम से करता है –''''गाँव मे बिसेसर दुबे भी लंगड़ थे और दद्दा भी। एक के बुलाये जाने पर दूसरे के कान खड़े हो जाते। सो पहले बिसेसर दुबे ही लंगड़ाते हुए सामने आए, '' का राजा.. ? अवधू सिंह ने उनकी पैलगी की और स्पष्ट किया, ''''आपको नहीं महराज, हम तो ''लंगड़ा लोहरा' को ढूँढ़ रहे हैं ।.....''[2]

''दद्दा''

हाँ''

ई दुबे से कैसे बोल रहे थे और तुमसे कैसे?''[3]

योद्धा कहानी में दुबौली गाँव के पाँच घर ब्राहम्णों के तथा दो घर लोहारों के साथ अन्य छोटी जातियों का चित्रण है। पूरी कहानी में ये दोनों जातियाँ विपरीत चरित्रों का निर्माण करती है। कहानी में एक ओर ब्राहम्णों के दम्भ, क्रूरता, शोषण और राजनीति का नग्न यथार्थ चित्रण है तो वहीं लोहारों के प्रति उपेक्षित व्यवहार और नीच दिखाने तथा बनाने की प्रवृत्ति का भी उद्घाटन है। संभवतः यह कुशल जनतंत्र का अभाव ही है जिसमें समाज आज भी तमाम जकड़नों में जी रहा है ऐसा नहीं कि नीचे तबकों के लोगों में विद्रोह और विरोध करने की क्षमता या दमखम नहीं है पर दबंगई और राजनीति ने कमर इनकी (दलितों) तोड़ रखी है। यहाँ ब्राहम्णों का लोहारों के प्रति संकुचित दृष्टि, दुर्भावना, दुर्व्यवहार, स्वार्थ और संकीर्णता साफ पता चलता है। झूठे आश्वासनों के बीच जातियता खत्म हो चुकी है पर ग्रामीण क्षेत्रों में उसका यथार्थ देखते ही बनता है। मोतीलाल गुप्ता का कथन है कि – ''जातिवाद वह संकुचित मनोभावना है जो व्यक्तियों को अपनी जाति विशेष के स्वार्थों की दृष्टि से सोचने के लिए प्रेरित और अपनी जाति के हितों को सर्वोपरि समझने के लिए प्रोत्साहित करती है तथा सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र से भी अधिक महत्व जाति को देती है।''[4] वह यह कि क्या आज के स्वाधीन भारत में कुशल जनतंत्र की स्थापना हो पाई है? हमारे देश को आजादी मिली है, परंतु न प्रशासनिक ढाँचे में कोई बुनियादी परिवर्तन हुआ और न हीं हमारा सामाजिक ढाँचा बदला।यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि स्थितियाँ और अधिक जटिल और उग्र हुई हैं। नवजागरण तथा स्वाधीनता आंदोलन की सारी सकारात्मक विरासत, हमारे सत्ताधारी वर्ग के हाथों से फिसलती गई और देश तरह–तरह की विषमताओं और विसंगतियों में उलझता गया। हर कीमत में अपनी सत्ता को बनाये और बचाये रखने के खातिर शासक वर्ग जनता को झूठे वायदे से भरमाता है, विकास के नाम पर उसने जो कुछ किया वह था असमान–असंतुलित विकास। इस बीच अमीरों की अमीरी बढ़ी है और गरीबों की गरीबी। झूठे दंभ, जातिवादी सोच और संकीर्ण मानसिकता ने गाँव के दलित युवाओं के जीवन को नरक बना दिया, उन्हें गाँव छोड़ने के लिए मजबूर किया। वहीं दूसरा ज्वलंत प्रश्न जो खड़ा होता है, वह यह कि भारतीय संविधान धर्म निरपेक्ष समतामूलक जन का आकांक्षी है। पर क्या मूलतः आज हम समता और समानता पर आधारित हैं? कहानी में यह विश्लेषण का बिन्दु है, प्रतिरोध की हर आवाज को दबाने की भरसक कोशिश, तरह–तरह के छल–छद्म, दमन और शक्ति प्रदर्शन, महज विचारों की दुनिया में अपने को बहलाता हमारा शासक वर्ग, निरंतर मनुष्य अपने मूल प्रश्न से भटकता जा रहा है। कहानी में तीसरा जो विचारणीय तथ्य उभरकर आता है वह वर्गवाद की खाई है।

साधारणतः ग्रामीण, आमजन, किसान, मजदूर, स्त्री, दलित सभी आज आर्थिक सांस्कृतिक, सामाजिक मुक्ति का अनुभव नहीं करते हैं। फिर क्या मात्र राजनीतिक सत्ता के हस्तांतरण तक सीमित स्वतंत्रता का कोई भी मतलब शेष बचता है। कहानी इसी परिदृश्य की ओर आगे बढ़ती है।

दलित दद्दा को ब्राहम्णों के अपमान का दंश तो है पर प्रतिरोध नहीं कर सकता तथा इस क्रोध को बेटे पर निकालता है। कहानी में संजीव दिखा रहे हैं कि समाज में जातियों का दायरा बाँध दी गई है जिसके तहत कौन–कौन सी जातियाँ आती है। कुछ ऊँची जातियाँ जैसे – बनिया, लाला, ठाकुर, बाभन तथा दूसरे पायदान पर धोबी, धरिकार, पासी, चमार आदि–आदि। जातियों के निर्माण के संबंध में ग्रामीण पिछड़े समाज की मानसिकता है कि यह सब भगवान की बनाई चीज है। संजीव यहाँ गंभीर सवाल उठाते हैं जिस भगवान ने सबकी जाति बनायी उनकी उस ""भगवान की क्या जात है? लेकिन सटीक उत्तर न मिलने पर कहानीकार कथानायक के माध्यम से फिर कहता है –– ""चमार, पासी, कुर्मी, कोंहार, गड़ेरिया, बनिया, अहीर, मुसलमानों में कोई भगवान..?"[5] कथाकार के इस तरह के सवाल खड़ा करने का मतलब यह नहीं कि वे इस पर कोई प्रश्न चिंन्ह लगाना चाहते हैं बल्कि ऐसा कहकर समाज को यह संदेश देना चाहते हैं कि जब इसपर ने इसका निर्माण नहीं किया और न ही इसके संदर्भ में कोई नियम–कानून बनाये। तो ईस्वर को मानने वाले इसे क्यों ढोये जा रहे हैं? आखिर कब हमारा समाज इन कुसंस्कारों से मुक्त हो पायेगा।

कहानी में जातियता के स्तर पर जो दूसरी बड़ी चीज उभर कर आयी है वह अन्तर्जातीय विवाह की समस्या है। वर्तमान स्थितियाँ बड़ी गंभीर घातक तथा जटिल है। जातियता अभी खत्म नहीं हुई कि वहाँ विजातीय विवाह की परम्परा समाज को और जटिलता के घेरे में लिया है उसमें भी उच्चवर्ग की? फेरू दूबे एक नटिनी से विवाह कर लेने पर पूरे गाँव–समाज में उनके नाम पर न सिर्फ थूका बल्कि उन्हें बाह्णण से कुत्ता बना दिया। उनकी भाभी कहती है –– "तू बामन नहीं कुत्ता है, कुत्ता! एक हाड़ लाकर चिचोर रहा है। कुत्ते को घर में घुसाकर मैं अपना धरम भ्रष्ट क्यों करूँ? हमारे घर में क्या बिटिया–विटार नहीं है?"[6] जाति भेद सिर्फ सवर्ण और अवर्ण के बीच तक ही सीमित नहीं है बल्कि यह अपने अपने वर्ग में भी है । फेरू दूबे जो स्वयं ब्राह्मण वर्ग का है लेकिन जब वह एक नटिन से शादी कर लेता है तब उसी के समाज वाले उसे छूत मान लेते हैं। यथा – "" मैंने देखा, जहाँ फेरू काका खड़े थे, उस जगह को गोबर से लिपवाया गया और तुलसी कुश–गंगाजल छिड़ककर बाकायदा मन्त्र से शुद्ध किया गया।"[7] बात इतने तक ही नहीं समाप्त होती है। अपने हिस्से की जमीन माँगने पर पंचायत उसके विपक्ष में फैसला सुनाती है –– "तुमने बाभन रहते हुए भुँई माँगी होती तो जरूर मिलती। लेकिन अब जबकि तुम बाभन रहे नहीं, भरस्ट हो गये हो, तो बाभन की जमीन पर तुम्हारा कोई हक नहीं बनता।"[8] इस प्रकार स्थान को गोबर से लिपवाना, तुलसी–कुश–गंगाजल छिड़ककर, मंत्र पढ़कर शुद्ध करना आदि कुसंस्कारों के माध्यम से बाह्णणों के ब्राह्मणवाद की पोल खोलकर रख दी है। यह पंक्ति सवर्ण मानसिकता और पंचायतों की सनातनता को झकझोर कर रख देती है। विजातीय विवाह की परिणति को संजीव उन्हीं चरित्रों के संदर्भ में व्यक्त करते हैं। इस विवाह की सबसे बड़ी सौगात फेरू दूबे और उसकी पत्नी को मिलती है – मौत। कथानायक की माई और छोटे काका को मारते–पीटते पुलिस ले जाती है –– "फेरू काका और उनकी मेहरारू को "घाटी' दी गयी थी उन्हीं की गोजी से। ..... फिर काका और माई को गरियाते मारते–पीटते ले जाने लगी पुलिस।"[9] यहाँ संजीव न केवल समाज की रूग्ण व्यवस्था को दर्शाया है बल्कि सवर्णों की दबंगई को भी दर्शाता है। यथा– "गौरमिण्टी अस्पताल में चीर–फाड़ के बाद भी लाशें सड़तीं, बदबू देती रहीं फेरू काका और उनकी मेहरारू की लेकिन गाँव से कोई भी लेने न आया, बभनौटी से भी नहीं?मेहतरों ने वहीं फूंक दी लाशें ।"[10] पूरी कहानी में जनतंत्र की व्यवस्था तार–तार होती गई है जिसमें दलित समाज पीसता ही जा रहा है। पूँजीवादी सामंती व्यवस्था ने न सिर्फ जाति, धर्म और संस्कृति पर ही अपना आधिपत्य जमाया बल्कि न्याय व्यवस्था और पुलिस को काफी प्रभावित किया है। हमारी न्याय व्यवस्था और पुलिस भी उन्हीं के इशारों पर काम करती रही हैं। फलतः आज भी गाँव के गरीब लोगों को समुचित न्याय नहीं मिल पाता है। इस सत्य को संजीव ने योद्धा कहानी में रेखांकित किया है –"उधर काका और माई को छुड़ाने में हमारे नाममात्र के खेत, और माई, आजी के नाममात्र के गहने भी बिक गए। कर्ज चढ़ गया ऊपर से।"11

गाँव की जलालत भरी जिन्दगी से ऊब कर अपने बच्चों को एक नई जिन्दगी देने की तलाश में गाँव का दलित गरीब तबका शहर की ओर रूख करता है। जेल से छूटने के बाद काका का घर न जाकर दिल्ली चले जाना इसी सत्य को रेखांकित करता है। मास्टर जी से जब कथानायक यह कहता है कि –– "दरोगाई तक तो पहुँच ही जाएगा अब, क्यों मास्टर जी?"[12] तो पूरी दृष्टि साफ हो जाती है। इससे यह पता चलता है कि गाँव से अलग होना न सिर्फ अपने व्यक्तित्व को बदलना है बल्कि पूरे परिवार को बदलना है।

आज हम विकास की जितनी भी बातें कह लें कि गाँव का परिवेश पूरी तरह से बदल गया है, अब हर कोई स्वतंत्र होकर अपना स्वतंत्र जीवन जी रहा है। लेकिन गाँव के संदर्भ में यह बात पूरी तरह से सटीक नहीं कही जा सकती। आज भी गाँव के स्वर्ण अपनी झूठी आन–बान और संकीर्ण सोच से उबर नहीं पाये हैं। दलित व पिछड़ों के द्वार कोई भी विकासात्म कार्य उन्हें नहीं सोहाता। बड़कू जब यह घोषणा करता है कि इस बार का "रामफेर–रामचेत' सम्मान "गिरजा रविदास' को दिया जाएगा क्योंकि उसने दूलारी जैसी बेसहारा को सहरा दिया। तब इनका गुस्सा सातवें आसमान पर चढ़ जाता है। बड़कू अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि दर्शकों में से कई लोग विरोध में उठकर खड़े हो गए, ""अरे देखते क्या हो, पैसे के बूते इस धरम की सभा में

अधरम फैला रहा है सार। खींच कर मारो दस जूते, दिमाग सही हो जाए।''[13]

संजीव के कहानीकार की यब विशेषता रही है कि उन्होंने इस कहानी में समाज का एक पक्षीय विस्लेषण नहीं किया है। उन्होंने एक ओर यदि उच्च वर्ग वालों के कुसंस्कारों को रेखांकित किया है तो दूसरी ओर निम्न समाज में आ रहे बदलाव को भी रेखांकित किया है। आज का दलित समाज सदियों से जिन कुसंस्कारों के विरूध संघर्ष करता रहा है, थोड़ी सी सम्पन्नता आ जाने अपने समाज के विकास की बात छोड़कर ,अपने विगत संघर्षों को भूल कर उन्हीं ब्राह्णवादी संस्कृति को अपना लेता है और यही लेखक की सबसे बड़ी चिंता है जिसे उसने बड़कू के इस कथन के माध्यम से रेखांकित किया है। बड़कू कहता है – ''''हमारे अनचाहे ही खुद बभनपने में समाते जाना– हमी नहीं, ज्यादातर लोगों का। युगों से इस बभनेपने के मारे लोगों में तो बभनापना नहीं आना चाहिए था न!''[14]

निष्कर्ष

संजीव ग्रामीण दलित बुनावट को पूरी तरह उसी के संदर्भों में रूपायित करते हैं। पूरी कहानी युगीन परिदृश्य को उजागर करती चलती है। संजीव के कथाकार की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्होंने अपनी कहानियों में एकांगी दृष्टिकोण नहीं प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्रस्तुत कहानी मंन ग्रामीव जीवन की तमाम विसंगतियों विभिन्न वर्गों के पात्रों के माध्यम से एक ओर जहाँ चित्रित किया है वहीं दूसरी गाँवों में व्याप्त जाति, धर्म, कुसंस्कारों से समाज को निजात दिलाने के लिए बड़े वैज्ञानिक समाधान भी प्रस्तुत किया है। जीवन की सम्पूर्णता में यह कहानी दलितों के आत्म सम्मान, स्वाभिमान और विकास की प्रक्रिया में जातिगत विद्वेष से ऊपर उठकर मानव होने की कहानी है।

संदर्भ गंथ सूची

1. *मरेण डॉ0 शहाजहान– सामाजिक यथार्थ और कथाकार संजीव, श्रुति पब्लिकेशन्स, जयपुर, संस्करण–2009,पृ0–264*
2. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 268*
3. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 269*
4. *गुप्ता मोतीलाल–भारतीय सामाजिक संस्थाएँ, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण–2009 पृ0–59*
5. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 271*
6. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 272*
7. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 272*
8. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 272*
9. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 273*
10. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 273*
11. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 273*
12. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 273*
13. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 278*
14. *संजीव– संजीव का कथा–संसार , तीसरा पड़ाव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण– 2008, पृ0 सं0– 280*